समक्ष जीसी मितल और डीवी सहगल माननीय न्यायमूर्ति

हरि शंकर -याचिकाकर्ता।

बनाम

कैलाशो देवी और अन्य -प्रतिवादी।

1980 की सिविल पुनरीक्षण संख्या 1369

14 अप्रैल 1986

हरियाणा शहरी (किराया और बेदखली नियंत्रण) अधिनियम (1973 का XI) - धारा 7 और 13 - सिविल प्रक्रिया संहिता (1908 का V) - धारा 9, और 11, आदेश 8, नियम 6 ए से 6 जी - सीमा अधिनियम (XXXVI) 1963 का) - अनुच्छेद 113 - किराए का भुगतान न करने के आधार पर किरायेदार को बेदखल करने की मांग करने वाले किरायेदार के खिलाफ मकान मालिक द्वारा दायर आवेदन - किरायेदार ने किराए की मात्रा पर विवाद करते हुए एक बयान दिया लेकिन फिर भी मकान मालिक द्वारा दावा की गई राशि का भुगतान किया - किरायेदार ने बाद में मुकदमा दायर किया कथित तौर पर उसके द्वारा भुगतान किए गए अतिरिक्त किराए की वसूली के लिए - किराया अधिनियम की धारा 7 - क्या मुकदमे की रखरखाव को रोकता है - किरायेदार - क्या आदेश VIII, नियम 6 ए के प्रावधानों के तहत किराया नियंत्रक ट्रेलर से पहले काउंटर दावा दायर करना चाहिए था - स्वतंत्र मुकदमा - क्या सुनवाई योग्य है - जैसा कि ऊपर कहा गया है, वसूली के लिए मुकदमा दायर करने की सीमा - क्या सीमा अधिनियम के अनुच्छेद 113 के अंतर्गत आता है - किरायेदार द्वारा दायर किया गया पुनर्न्याय का मुकदमा - क्या सिद्धांतों के तहत वर्जित है।

अभिनिर्धारित कि एक किरायेदार को उसके द्वारा भुगतान की गई किराए की राशि, जो किराए की सहमत दर पर देय से अधिक है, की वसूली के लिए एक नागरिक मुकदमा दायर करके वसूल करने का अधिकार है। किरायेदार को भुगतान की गई अतिरिक्त राशि की वसूली के अपने अधिकार को बनाए रखने के लिए किसी वैधानिक प्रावधान का समर्थन लेने की आवश्यकता नहीं है । सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 9 के प्रावधानों को पढ़ने से, इसमें कोई संदेह नहीं हो सकता है कि सिविल न्यायालय के पास उस मुकदमे की सुनवाई करने का अधिकार क्षेत्र था जो निस्संदेह एक नागरिक प्रकृति का है और इसका संज्ञान स्पष्ट रूप से या वर्जित नहीं है। हरियाणा शहरी (किराया और बेदखली नियंत्रण) अधिनियम, 1973 की धारा 7 के आधार पर निहित।

(पैरा 4 और 7)

अभिनिर्धारित कि किरायेदार द्वारा भुगतान की गई अतिरिक्त किराया राशि ¬उसके द्वारा वापस ली जा सकती है और मुकदमे के माध्यम से कार्रवाई वर्जित नहीं है। साथ ही, यह भी स्पष्ट है कि मकान मालिक द्वारा बेदखली की कार्यवाही में किरायेदार एक प्रतिदावा दायर करके किराए का निर्धारण कर सकता है और किराया नियंत्रक के पास इसे निर्धारित करने और अतिरिक्त राशि की वसूली का निर्देश देने का अधिकार क्षेत्र है। किरायेदार द्वारा मकान मालिक को दिया गया किराया, यदि कोई हो। संहिता के आदेश VIII के नियम 6-ए से 6-जी को मुकदमेबाजी की बहुलता से बचने के उद्देश्य से शामिल

किया गया है। संशोधन ने इस प्रक्रियात्मक कानून में लंबे समय से आवश्यक सुधार लाया है लेकिन यह वादी का अधिकार है प्रतिदावा करना या मुकदमा दायर करना। ऐसे में, एक स्वतंत्र मुकदमा कायम रखा जा सकेगा।

(पैरा 6)

अभिनिर्धारित कि जहां किसी भी राशि का भुगतान किया गया है, किराया अधिनियम के प्रावधानों के कारण, राशि का भुगतान नहीं किया जाना चाहिए था और उक्त अधिनियम की धारा 7 के तहत किरायेदार द्वारा मकान मालिक से वसूली योग्य है, तो किरायेदार को मुकदमा दायर करना होगा। छह महीने के भीतर अधिक भुगतान की गई राशि की वसूली। हालाँकि, जहां भुगतान की गई अतिरिक्त राशि अधिनियम की धारा 7 के विचार से परे है और सामान्य कानून के तहत मकान मालिक से वसूली योग्य है, वसूली के लिए मुकदमा दायर करने की सीमा तीन साल होगी और अनुसूची के अवशिष्ट अधिनियम, 1963 के अनुच्छेद 113 द्वारा शासित होगी।

(पैरा 8)

अभिनिर्धारित कि विरोध के तहत भुगतान का सिद्धांत पवित्र नहीं है ¬बल्कि प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों से अनुमान लगाया जा सकता है। यदि किरायेदार द्वारा किराए की कम दर की मांग की गई थी, तो यह माना जाता है कि किरायेदार द्वारा की गई उच्च दर पर किराए की निविदा विरोध के तहत थी या केवल अनंतिम थी, ताकि किराए की मात्रा के संबंध में मुद्दे का निर्णय खिलाफ हो जाए। किरायेदार को किराया अधिनियम की धारा 13(2)(i) के प्रावधान के लाभ से वंचित नहीं किया जा सकता है। 1976 के संशोधन अधिनियम द्वारा शुरू की गई संहिता की धारा 11 के स्पष्टीकरण VIII को पढ़ने से पता चलता है कि बाद के मुकदमे में एक मुद्दा -पुनर्निर्णय के सिद्धांतों द्वारा वर्जित होगा यदि उस पर सुनवाई की गई और अंततः सीमित न्यायालय द्वारा निर्णय लिया गया। हालाँकि, यदि किराए की दर के संबंध में मुद्दे और क्या मकान मालिक ने प्राप्त किया था और ¬प्राप्त करने के हकदार से अधिक किराए की राशि का दावा किया था, तो किराया नियंत्रक द्वारा न तो सुना गया है और न ही अंतिम निर्णय लिया गया है, तो तकनीकी को लागू करना रचनात्मक न्यायिक निर्णय के नियम के अनुसार किराया नियंत्रक के समक्ष बेदखली की कार्यवाही में मकान मालिक द्वारा प्राप्त अतिरिक्त राशि की वसूली के लिए मुकदमे को न्यायिक निर्णय के सिद्धांतों द्वारा वर्जित नहीं माना जा सकता है।

(पैरा 10 और 11)

अवतार सिंह बनाम मच्छी राम, 1977 आरएलआर 150 (खारिज)

28 जनवरी, 1986 को इस मामले में शामिल कानून के एक महत्वपूर्ण प्रश्न के निर्णय के लिए माननीय श्री न्यायमूर्ति गोकल चंद मितल द्वारा मामले को एक बड़ी पीठ के पास भेजा गया । बड़ी पीठ में माननीय श्री न्यायमूर्ति गोकल चंद मितल और एवं माननीय श्री न्यायमूर्ति डीवी सहगल ने कानून के प्रश्न का फैसला किया और 14 अप्रैल, 1986 को गुण-दोष के आधार पर मामले के निर्णय के लिए अपील को विद्वान अतिरिक्त जिला न्यायाधीश करनाल को भेज दिया।

6 मार्च, 1980 के आदेश में संशोधन के लिए पंजाब न्यायालय अधिनियम की धारा 41 के तहत याचिका, जिसमें श्री डीआर गोयल, एचसीएस, सब जज प्रथम श्रेणी, पानीपत के 13 मार्च, 1980 के

आदेश को उलट दिया गया था। सितंबर, 1979 के मुकदमे को ख़ारिज कर दिया गया और पार्टियों को पूरी लागत स्वयं वहन करने के लिए छोड़ दिया गया।

याचिकाकर्ता के लिए अधिवक्ता :- एलएन जिंदल

प्रतिवादियों के लिए :- श्री एचएल सरीन, वरिष्ठ अधिवक्ता, आरएल सरीन और एएस ग्रेवाल, अधिवक्ता।

निर्णय

डीवी सहगल, न्यायमूर्ति

1. हरि शंकर वादी याचिकाकर्ता मकान नंबर 383, वार्ड नंबर 6, खैल बाजार, पानीपत में किरायेदार हैं। उनके मकान मालिक प्रेम चंद और मनु राम ने हरियाणा शहरी (किराया और बेदखली का नियंत्रण) अधिनियम, 1973 (इसके बाद 'अधिनियम' कहा जाएगा) की धारा 13 के तहत किराया नियंत्रक, पानीपत के समक्ष पांच आधारों पर निष्कासन के लिए प्रस्तुत किया गया है, जिनमें से एक यह है कि उन्होंने 51 रुपये प्रति माह की दर से तीन साल की अवधि के लिए 1836 रुपये न तो किराए का भुगतान किया था और न ही निविदा दी थी। 1.2.1977 को जब आवेदन किराया नियंत्रक के समक्ष सुनवाई के लिए आया, तो उन्होंने एक बयान दिया कि परिसर के किराए की दर 21.25 रुपये प्रति माह है, जिसमें गृह-कर भी शामिल है। हालांकि, उन्होंने किराया नियंत्रक द्वारा आकलित लागत के रूप में 30 रुपये के अलावा 19.86 रुपये की राशि और सभी 2105 रुपये में ब्याज के रूप में 239 रुपये की राशि प्रस्तुत की। उन्होंने किराया नियंत्रक के समक्ष लिखित बयान भी दायर किया, जिसमें कहा गया है कि किराए की दर 21.25 रुपये प्रति माह थी, न कि 51 रुपये प्रति माह, जैसा कि निष्कासन आवेदन में आरोप लगाया गया है। चूंकि उन्होंने निष्कासन आवेदन में लगाए गए किराए की राशि की पेशकश की थी, जिसे मकान मालिक द्वारा स्वीकार कर लिया गया था, इसलिए किराया नियंत्रक ने निष्कासन के लिए अन्य चार आधारों पर निर्णय लिया। जबकि निष्कासन आवेदन अभी भी किराया नियंत्रक के समक्ष लंबित था, उन्होंने 26.2.1977 को प्रेम चंद और मनु राम के खिलाफ 1790 रुपये की वसूली के लिए तत्काल मुकदमा दायर किया, इस आरोप पर कि उन्हें 51 रुपये प्रति माह की दर से तीन साल के किराए के रूप में 1836 रुपये का भुगतान करने के लिए कहा गया था, जबकि प्रतिवादी केवल 21.25 रुपये प्रति माह की सहमत दर पर किराया प्राप्त करने के हकदार थे।

2. यहां यह उल्लेख किया जा सकता है कि इस मुकदमे के लंबित रहने के दौरान 26.6.1977 को प्रेम चंद प्रतिवादी की मृत्यु हो गई और प्रतिवादी संख्या 1 से 4 को उनके कानूनी प्रतिनिधियों के रूप में शामिल किया गया। पानीपत के प्रथम श्रेणी के उपन्यायाधीश ने इस निष्कर्ष को वापस कर दिया कि वादी और प्रतिवादी के बीच किराए की दर 21.25 रुपये प्रति माह थी और इसके परिणामस्वरूप वादी के मुकदमे को 6% प्रति वर्ष की दर से ब्याज के साथ 1790 रुपये के लिए डिक्री की गई। प्रतिवादी प्रतिवादियों द्वारा अपील को करनाल के जिला न्यायाधीश ने दिनांक

6.3.1980 के फैसले और डिक्री के माध्यम से इस आधार पर स्वीकार कर लिया था कि मुकदमा रचनात्मक पुनर्विचार के सिद्धांत द्वारा निषिद्ध था चूंकि वादी द्वारा किराया नियंत्रक के समक्ष बिना शर्त प्रस्तुत किया गया था और उसने किराया नियंत्रक के समक्ष किराए की दर के संबंध में किसी भी मुद्दे का दावा नहीं किया था। अतिरिक्त जिला न्यायाधीश ने अवतार सिंह बनाम मच्छी राम, 1977 रेंट लॉ रिपोर्टर 150 मामले में मुख्य न्यायाधीश आरएस नरूला के फैसले पर भरोसा किया ।वादी ने परिणामस्वरूप इस अदालत में वर्तमान पुनरीक्षण याचिका दायर की।

3. यह पुनरीक्षण याचिका पहले मेरे विद्वान भाई जीसी मित्तल, न्यायमूर्ति के समक्ष 28.1.1986 को सुनवाई के लिए आई थी जब अवतार सिंह के मामले (सुप्रा) में निर्धारित कानून की शुद्धता के बारे में संदेह व्यक्त किया गया और यह उचित समझा गया कि मामले का फैसला एक बड़ी बेंच द्वारा किया जाए। इसे इस तरह हमारे सामने रखा गया है।

4. सुनवाई के दौरान, न केवल इस सवाल पर बहस की गई कि क्या मुकदमा रचनात्मक निर्णय के सिद्धांत द्वारा वर्जित है या नहीं , बल्कि उत्तरदाताओं के वकील ने इस आशय का एक अतिरिक्त तर्क उठाया कि अतिरिक्त राशि भले ही वादी द्वारा प्रस्तुत की गई हो। किराया नियंत्रक के समक्ष निष्कासन आवेदन की कार्यवाही के दौरान तत्काल मुकदमा दायर करके वसूली की मांग नहीं की जा सकती थी, क्योंकि यह कानून के तहत उसके लिए उपलब्ध कोई उपाय नहीं था।

5. पहले बाद के तर्क को उठाते हुए, उत्तरदाताओं के विद्वान वकील ने प्रस्तुत किया कि अधिनियम की धारा के तहत जहां किसी भी राशि का भुगतान किया गया है, अधिनियम के प्रावधानों के कारण राशि का भुगतान नहीं किया जाना चाहिए था, ऐसी राशि समय अवधि के भीतर किसी भी समय भुगतान की जानी चाहिए। भुगतान की तारीख के 6 महीने बाद किरायेदार द्वारा भुगतान प्राप्त करने वाले मकान मालिक या उसके कानूनी प्रतिनिधियों से वसूली की जा सकती है और वसूली के किसी भी अन्य तरीके पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, इसे मकान मालिक को देय किसी भी किराए से काटा जा सकता है। उन्होंने तर्क दिया कि यह केवल ऐसे मामले में है जहां किसी परिसर का उचित किराया अधिनियम की धारा 4 के तहत निर्धारित किया जाता है, कि अधिनियम की धारा 6 (ए) के तहत मकान मालिक द्वारा उचित किराए से अधिक किसी भी राशि का दावा नहीं किया जा सकता है। वर्तमान मामले में, अधिनियम की धारा 4 के तहत परिसर का उचित किराया तय नहीं किया गया था। इसलिए, किराए की सहमत दर से अधिक दर पर भुगतान की गई राशि किरायेदार द्वारा अधिनियम की धारा 7 के तहत वसूल नहीं की जा सकती है। हमारे विचार से इस विवाद में कोई दम नहीं है। यह इस न्यायालय द्वारा **भगत पंजू राम और अन्य बनाम राम लाल, 1968 पीएलआर 409**, और **नौहर चंद बनाम ठाकर दास , 1977 करंट लॉ जर्नल 251** में निर्धारित किया गया है कि किरायेदार को उसके द्वारा भुगतान की गई किराए की राशि की वसूली के लिए एक नागरिक मुकदमा दायर करके किराए की सहमत दर पर देय राशि से अधिक की वसूली करने का अधिकार है। किरायेदार को भुगतान की गई अतिरिक्त राशि की वसूली के अपने अधिकार को बनाए रखने के लिए किसी वैधानिक प्रावधानों का समर्थन लेने की आवश्यकता नहीं है। **राजपूताना मालवास रेलवे को-ऑपरेटिव स्टोर्स, लिमिटेड बनाम अजमेर म्यूनिसिपल बोर्ड, 32 ऑल 491, द म्यूनिसिपल कमेटी, अमृतसर बनाम अमर**

दास , एआईआर 1953 पंजाब 99 में निम्नलिखित अवलोकन इस संबंध में कानून की स्थिति की सराहना करने में सहायक होगा: -

> "पुराने आम कानून की सबसे व्यापक गणना यह थी कि वादी के उपयोग के लिए प्रतिवादी द्वारा प्राप्त धन होता था। यह गणना वहां लागू होती थी जहां एक प्रतिवादी को धन प्राप्त होता था जो कि न्याय है और जांच उन परिस्थितियों में वादी की होती थी जिनके द्वारा प्रतिवादी को वादी के उपयोग के लिए रसीद प्रदान की जाती थी । यह मुकदमे का एक रूप था जिसे तब अपनाया जाता था जब वादी का पैसा प्रतिवादी द्वारा गलत तरीके से प्राप्त किया गया था, उदाहरण के लिए, जब पैसा जबरन वसूली या उत्पीड़न, या कानूनी प्रक्रिया का दुरुपयोग करके वसूला गया था, या जब किसी वाहक को सामान ले जाने के लिए प्रेरित करने के लिए अधिक शुल्क का भुगतान किया गया था या जब किसी कार्यालय के रंग के तहत अवैध रूप से की गई मांग के निर्वहन में वादी द्वारा पैसे का भुगतान किया गया था। यह दावे का एक रूप था जो तब लागू होता था जब वादी का पैसा प्रतिवादी द्वारा गलत तरीके से प्राप्त किया गया था कि वादी ने इसे अपनाने में गलत को माफ कर दिया और दावा किया कि प्राप्त धन उसके उपयोग के लिए है।

3. **महोमद वाहिब बनाम महोमद अमीर**, में मुखर्जी, न्यायमूर्ति की निम्नलिखित टिप्पणियाँ । **अमर दास** के मामले में उद्धृत 527 (सुप्रा) पुनरुत्पादन के लायक हैं: -

> **मूसा बनाम मैक्फेरिम , (1760) 2 बूर 1005** में लॉर्ड मैन्सफील्ड सीजे द्वारा बताया गया है , कार्रवाई का यह रूप गलती से भुगतान किए गए पैसे के लिए है, या किसी प्रतिफल पर, जो असफल होने पर होता है, या लगाए गए धन के लिए होता है (उन परिस्थितियों में व्यक्तियों की सुरक्षा के लिए बनाए गए कानूनों के विपरीत वादी की स्थिति का अभिव्यक्त या निष्प्रभावी) या जबरन वसूली करने वाला उत्पीड़न और अनुचित लाभ उठाया गया है, दूसरे शब्दों में, यह कार्रवाई उन मामलों में बनाए रखने योग्य होगी जिसमें प्रतिवादी रसीद के समय , वास्तव में या कानून की धारणा या कल्पना से वादी के उपयोग के लिए धन प्राप्त करता है।"

4. कानून की उपरोक्त स्थिति के साथ-साथ सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 9 (जिसे इसके बाद 'संहिता' कहा जाएगा) के प्रावधानों को ध्यान में रखते हुए, इसमें कोई संदेह नहीं हो सकता है कि न्यायालय के पास इस मुकदमे की सुनवाई करने का अधिकार क्षेत्र था, जो निस्संदेह एक नागरिक प्रकृति का है। और इसका संज्ञान स्पष्ट या परोक्ष रूप से वर्जित नहीं है।

5. इसके बाद प्रतिवादियों के विद्वान वकील ने हमारा ध्यान **भीम सेन बनाम लक्ष्मी नारायण (1982) 84 पीएलआर 155** मामले में इस न्यायालय की खंडपीठ के फैसले की ओर आकर्षित किया। और दलील दी कि याचिकाकर्ता को संहिता के आदेश VII के नियम 6-ए से 6-जी के प्रावधानों का सहारा लेना चाहिए था और इस प्रक्रिया में किराया नियंत्रक के समक्ष जवाबी दावा दायर करना चाहिए था । इस प्रश्न के निर्धारण के लिए बेदखली आवेदन का परीक्षण कि किराए की सहमत दर रुपये थी या नहीं। मकान मालिक के दावे के अनुसार 51/- प्रति माह या जैसा कि उन्होंने तर्क दिया था, 21.25 प्रति माह और किराया नियंत्रक के पास यह अधिकार क्षेत्र था कि यदि यह प्रश्न उसके पक्ष में तय किया गया था, तो उसके द्वारा मकान मालिक को भुगतान की गई अतिरिक्त राशि की वसूली का निर्देश दिया जाए। विद्वान वकील ने इस प्रकार प्रस्तुत किया कि **भीम सिंह के मामले (सुप्रा)** में फैसले

के अनुपात को देखते हुए, तत्काल मुकदमा चलने योग्य नहीं था। हमारे मन में कोई संदेह नहीं है कि भीम सिंह का मामला यह नहीं बताता है कि किरायेदार द्वारा उसके द्वारा प्रस्तुत किराए की अतिरिक्त राशि की वसूली के लिए एक स्वतंत्र नागरिक मुकदमा सुनवाई योग्य नहीं है। डिवीजन बेंच ने वास्तव में यह स्पष्ट रूप से स्पष्ट कर दिया है कि किरायेदार द्वारा भुगतान की गई अतिरिक्त किराया राशि उसके द्वारा वसूली योग्य है और मुकदमे की कार्रवाई पर रोक नहीं है। साथ ही, यह माना गया है कि मकान मालिक द्वारा लाई गई बेदखली की कार्यवाही में किरायेदार एक प्रतिदावा दायर करके किराए की दर का निर्धारण कर सकता है और किराया नियंत्रक के पास इसे निर्धारित करने और वसूली का निर्देश देने का अधिकार क्षेत्र है। यदि किरायेदार द्वारा मकान मालिक को किराए की अतिरिक्त राशि दी गई हो। यहां यह ध्यान दिया जा सकता है कि मुकदमेबाजी की बहुलता से बचने के उद्देश्य से संहिता के आदेश VII के नियम 6-ए से 6-जी को सिविल प्रक्रिया संहिता (संशोधन) अधिनियम, 1976 द्वारा शामिल किया गया था। इस संशोधन से पहले संहिता के प्रावधानों के तहत, वादी की मांग के विरुद्ध प्रतिवादी द्वारा संहिता के आदेश VII, नियम 6 के तहत दावा किया जा सकता था। उपरोक्त नियम 6 के दायरे में आने वाले सेट को कानूनी सेट-ऑफ के रूप में जाना जाता था, जबकि जो इसके दायरे में नहीं आता था, उसे न्यायसंगत सेट-ऑफ के रूप में स्टाइल किया गया था, जो कि मुकदमे की सुनवाई करने वाले न्यायालय के विवेक के तहत था। संशोधन ने इस प्रक्रियात्मक कानून में लंबे समय से अपेक्षित सुधार ला दिया है, लेकिन यह वादी का अधिकार है कि वह या तो आदेश VII, संहिता के नियम 6-ए से 6-जी के तहत प्रतिदावा करे या एक स्वतंत्र मुकदमा दायर करे।

6. इस पहलू पर चर्चा समाप्त करते समय, यह आवश्यक रूप से उल्लेख किया जाना चाहिए कि जहां किसी भी राशि का भुगतान किया गया है , वह राशि अधिनियम के प्रावधान के कारण भुगतान नहीं की जानी चाहिए थी और अधिनियम की धारा 7 के तहत किरायेदार द्वारा मकान मालिक से वसूली योग्य है। जैसा कि सर्वोच्च न्यायालय ने **मदनलाल छोटाभाई देसाई बनाम चंद्रकांत मोती लाल, एआईआर 1969 सुप्रीम कोर्ट 37: 1969 पीएलआर 217** में कहा है, किरायेदार को छह महीने के भीतर अधिक भुगतान की गई राशि की वसूली के लिए मुकदमा दायर करना होगा। हालांकि, जहां किरायेदार द्वारा मकान मालिक को भुगतान की गई अतिरिक्त राशि, जैसा कि मौजूदा मामले में है, अधिनियम की धारा 7 के विचार से परे है और वसूली योग्य है। जैसा कि ऊपर बताया गया है, सामान्य कानून के तहत मकान मालिक से किरायेदार द्वारा ऐसी राशि की वसूली के लिए मुकदमा दायर करने की सीमा तीन वर्ष है। हम **भगत पंजू राम के मामले (सुप्रा)** में पीसी पंडित, न्यायमूर्ति द्वारा अपनाए गए दृष्टिकोण से पूरी तरह सहमत हैं कि इस प्रकृति का एक मुकदमा परिसीमा अधिनियम, 1963 की अनुसूची के अवशिष्ट अनुच्छेद अर्थात अनुच्छेद 113 द्वारा शासित होता है।

7. फिर इस प्रश्न पर आते हुए कि क्या वादी का मुकदमा पुनर्न्याय के सिद्धांत से वर्जित है या नहीं , उत्तरदाताओं के विद्वान वकील ने तर्क दिया कि अवतार सिंह के मामले के अनुपात को भीम सिंह के मामले में डिवीजन बेंच द्वारा अनुमोदित किया गया है। भीम सिंह के मामले में फैसले पर विचार करने पर यह तर्क सामने नहीं आता है । वास्तव में, **यह नसीब सिंह बनाम ओम प्रकाश और अन्य (1979) 81 पीएलआर 202: 1979 (1) पीएलआर 591** में एमआर शर्मा,न्यायमूर्ति के फैसले को मंजूरी देता है, जिसमें यह माना गया है कि किरायेदार द्वारा किराए की निविदा दी गई है किराया नियंत्रक के समक्ष मकान मालिक द्वारा दायर बेदखली के लिए आवेदन की सुनवाई की पहली तारीख पर किरायेदार को किराए की मात्रा से संबंधित मुद्दे की सुनवाई का दावा करने से नहीं रोका जाता है।

"विरोध के तहत भुगतान" के सिद्धांत को पवित्र नहीं बल्कि प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों से अनुमान लगाने योग्य मामला माना गया। यदि किरायेदार द्वारा लिखित बयान में किराए की कम दर की वकालत की गई थी, तो इस प्रकार नसीब सिंह के मामले में निर्णय आगे बढ़ता है, यह माना जाता है कि किरायेदार द्वारा की गई उच्च दर पर किराए की निविदा विरोध के तहत या अनंतिम थी, इसलिए यदि किराए की मात्रा के संबंध में मुद्दे का निर्णय अंततः किरायेदार के खिलाफ गया, उसे अधिनियम की धारा 13 (2) (i) के प्रावधानों के लाभ से वंचित नहीं किया जा सका। इस प्रकार किरायेदार द्वारा दायर लिखित बयान को मकान मालिक द्वारा किराए की उच्च दर की मांग के खिलाफ अंतर्निहित विरोध के रूप में माना जा सकता है। अक्सर, जब किरायेदार मकान मालिक द्वारा की गई मांग के अनुसार किराया नियंत्रक के समक्ष बेदखली की कार्यवाही में किराया जमा करता है, भले ही वह अधिक किराया हो, तो मकान मालिक किराए का भुगतान न करने का आधार छोड़ देता है। जब तक कि किरायेदार द्वारा प्रतिदावा करके संहिता के आदेश 8, नियम 6-ए से 6-जी के प्रावधानों का सहारा नहीं लिया जाता है, तब तक पार्टियां किराए की दर या राशि की पर्याप्तता के सवाल पर मुद्दे में शामिल नहीं होती हैं। अधिनियम की धारा 13 (2)(i) के प्रावधान के तहत किराये का प्रस्ताव दिया गया । इस प्रकार, अपरिहार्य प्रश्न उठता है कि क्या ऐसी स्थिति में किरायेदार द्वारा मकान मालिक से उसके द्वारा दिए गए किराए की अतिरिक्त राशि की वसूली के लिए दायर किया गया मुकदमा रचनात्मक सिद्धांत के तहत वर्जित है? इसमें प्रश्न का विस्तार से वर्णन नहीं किया गया है। इसके निष्कर्ष के लिए, सीधे तौर पर **भारत संघ बनाम नानक सिंह, 1968** में सुप्रीम कोर्ट के फैसले पर भरोसा किया गया है । नानक सिंह के मामले में सर्वोच्च न्यायालय इस सवाल से निपट रहा था कि क्या सर्टिओरारिस की रिट में जहां विवादित आदेश के खिलाफ हमले का आधार उपलब्ध है, लेकिन उठाया नहीं गया है, क्या इसे याचिकाकर्ता द्वारा दायर बाद के मुकदमे में उठाया जा सकता है? उनकी रिट याचिका खारिज की जाए। यह माना गया कि इस तरह के आधार पर मुकदमा रचनात्मक निर्णय के सिद्धांत द्वारा वर्जित होगा। सुप्रीम कोर्ट ने **द वर्कमेंट कोचीन पोर्ट ट्रस्ट बनाम कोचीन पोर्ट ट्रस्ट के ट्रस्टी बोर्ड, एआईआर 1978 सुप्रीम कोर्ट 1283** के बाद के फैसले में रिट कार्यवाही और पर्यवेक्षक के संबंध में रचनात्मक निर्णय के आवेदन के सवाल पर फिर से निम्नानुसार विचार किया।:-

> “पुनर्न्याय के सिद्धांतों को इतनी हद तक विस्तारित करना सुरक्षित नहीं है कि यह अनुमान लगाने का काम न रह जाए। अपनी बात को स्पष्ट करने के लिए, हम एक उदाहरण ले सकते हैं। मान लीजिए कि उच्च न्यायालय में अनुदान के लिए एक रिट याचिका दायर की गई है कई आधारों पर निर्णय के किसी आदेश को चुनौती देने के लिए सर्टिओरारिस की एक रिट। यदि एक स्पीकिंग ऑर्डर द्वारा प्रतियोगिता के बाद रिट याचिका को खारिज कर दिया जाता है, तो जाहिर तौर पर यह किसी भी अन्य कार्यवाही, जैसे कि मुकदमे, अनुच्छेद 32 या अनुच्छेद 136 में न्यायिक अधिकार के रूप में कार्य करेगा। उसी आदेश या निर्णय से निर्देशित। यदि रिट याचिका किसी स्पष्ट आदेश द्वारा या तो दहलीज पर या प्रतियोगिता के बाद खारिज कर दी जाती है, उदाहरण के लिए, देरी के आधार पर या वैकल्पिक उपाय की उपलब्धता के आधार पर, तो कानून में एक और उपाय खुला है किसी भी अन्य कार्यवाही के मुकदमे को स्पष्ट रूप से पुनर्न्याय के सिद्धांत पर प्रतिबंधित नहीं किया जाएगा । बेशक, उसी उच्च न्यायालय या किसी अन्य में दायर कार्रवाई के एक ही कारण पर दूसरी रिट याचिका सुनवाई योग्य नहीं होगी क्योंकि एक याचिका के खारिज होने से किसी अन्य रिट याचिका को सुनने से रोक के रूप में कार्य करेगा। इसी प्रकार, भले ही एक रिट याचिका को गैर-बोलने वाले एक शब्द के आदेश द्वारा 'खारिज' कर दिया जाता

है, दूसरी रिट याचिका को खारिज नहीं किया जाएगा क्योंकि यहां तक कि एक शब्द के आदेश को भी, जैसा कि हमने ऊपर संकेत दिया है, आवश्यक रूप से निहित रूप से निर्णय लिया गया माना जाना चाहिए। यह मामला उच्च न्यायालय के रिट क्षेत्राधिकार के प्रयोग के लिए उपयुक्त नहीं है। उसी आदेश या निर्णय से दूसरी रिट याचिका झूठ नहीं होगी। लेकिन स्थिति काफी हद तक भिन्न होती है जब किसी रिट याचिका को मामले की योग्यता पर कोई राय व्यक्त किए बिना या तो सीमा पर या सुनने के बाद खारिज कर दिया जाता है - तब किसी भी योग्यता को आवश्यक रूप से और निहित रूप से तय नहीं किया जा सकता है और मुकदमे का कोई अन्य उपाय या अन्य कार्यवाही को न्यायिक सिद्धांतों के आधार पर प्रतिबंधित नहीं किया जाएगा ।"

8. यहां आगे उल्लेख किया जा सकता है कि रिट कार्यवाही जो भारत के संविधान के अनुच्छेद 226/227 के तहत उच्च न्यायालय के असाधारण क्षेत्राधिकार का प्रयोग करती है, उच्च स्तर पर है । किराया नियंत्रक, जो कि सीमित क्षेत्राधिकार वाला न्यायालय है, के समक्ष कार्यवाही को एक ही स्तर पर नहीं रखा जा सकता है। जब कोई मुद्दा न तो पहले उठाया गया हो और न ही किराया नियंत्रक द्वारा उस पर निर्णय लिया गया हो, तो हमारे विचार में, बाद के मुकदमे में उठाया गया ऐसा मुद्दा पुनर्न्याय के सिद्धांत द्वारा वर्जित नहीं होगा। वास्तव में यह अब व्यापक चर्चा की आवश्यकता वाला विवाद का विषय नहीं रह गया है। संशोधन अधिनियम, 1976 द्वारा प्रस्तुत संहिता की धारा 11 के स्पष्टीकरण VIII ने अंततः इस विवाद को हल कर दिया है और प्रदान करता है:_

"इस तरह के मुद्दे पर निर्णय लेने में सक्षम सीमित क्षेत्राधिकार वाले न्यायालय द्वारा सुना गया और अंततः निर्णय लिया गया एक मुद्दा, बाद के मुकदमे में पूर्व न्यायिक के रूप में कार्य करेगा , भले ही सीमित क्षेत्राधिकार वाला ऐसा न्यायालय उस मुकदमे के ऐसे बाद के मुकदमे की सुनवाई करने में सक्षम नहीं था जिसमें इस तरह का संदेह हो बाद में उठाया गया है।"

9. रेस ज्यूडिकाटा द्वारा रोक दिया जाएगा यदि इसकी सुनवाई और अंतिम निर्णय सीमित क्षेत्राधिकार वाले न्यायालय द्वारा किया गया हो। इस सिद्धांत को वर्तमान मामले में लागू करते हुए, यह सुरक्षित रूप से निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि किराए की दर के संबंध में मुद्दा और क्या मकान मालिक ने दावा किया था और जो वह प्राप्त करने का हकदार था उससे अधिक किराए की राशि प्राप्त की थी, किराया नियंत्रक द्वारा न तो सुनवाई की गई और न ही अंतिम निर्णय लिया गया। इसलिए, रचनात्मक निर्णय के तकनीकी नियम को लागू करके , किराया नियंत्रक के समक्ष बेदखली की कार्यवाही में मकान मालिक द्वारा प्राप्त अतिरिक्त राशि की वसूली के लिए मुकदमे को वर्जित नहीं माना जा सकता है।

10. हमारा मानना है कि **अवतार सिंह का मामला (सुप्रा)** अच्छा कानून नहीं बनाता है। इस प्रकार विद्वान अतिरिक्त जिला न्यायाधीश अपने निष्कर्ष में गलत थे कि तत्काल मुकदमा रचनात्मक निर्णय के सिद्धांत द्वारा वर्जित है।

11. नतीजतन, हम इस पुनरीक्षण याचिका को स्वीकार करते हैं, विद्वान अतिरिक्त जिला न्यायाधीश, करनाल के 6 मार्च, 1980 के फैसले और डिक्री को रद्द करते हैं और अपील को गुण-दोष के आधार पर निर्णय के लिए उनके पास भेज देते हैं।

12. पक्षों को अपने विद्वान वकील के माध्यम से 19.5.1986 को विद्वान अतिरिक्त जिला न्यायाधीश, करनाल के समक्ष उपस्थित होने का निर्देश दिया गया है।

13. लागत के संबंध में कोई आदेश नहीं किया जाएगा।

अस्वीकरण : स्थानीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के सीमित उपयोग के लिए है ताकि वह अपनी भाषा में इसे समझ सके और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है । सभी व्यवहारिक और आधिकारिक उद्देश्यो के लिए निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रमाणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्देश्य के लिए उपयुक्त रहेगा ।

उदित अग्रवाल

प्रशिक्षु न्यायिक अधिकारी

(Trainee Judicial Officer)

करनाल, हरियाणा